इकाई 19 मुद्रास्फीति एवं बेरोज़गारी

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य
19.1 प्रस्तावना
19.2 कीमत, कीमत स्तर और उसका माप
19.2.1 एक सूचकांक क्या होता है?
19.3 मुद्रास्फीति की परिभाषा
19.4 मुद्रास्फीति के समाज तथा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
19.5 मुद्रास्फीति के विभिन्न प्रकार
19.6 मुद्रास्फीति के कारण
19.6.1 मुद्रास्फीति : माँग–पक्ष
19.6.2 मुद्रास्फीति : पूर्ति–पक्ष
19.7 संरचनात्मक मुद्रास्फीति
19.8 मुद्रास्फीति विरोधी नीतियाँ
19.9 अव–स्फीति
19.10 मुद्रास्फीति जनित मंदी
19.11 स्फीति तथा बेरोज़गारी : फिलिप्स वक्र
19.12 सारांश
19.13 शब्दावली
19.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें
19.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा–संकेत

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में हम कीमतों तथा मुद्रास्फीति के विषय में बातचीत करेंगे। मुद्रास्फीति से हमारा नित्यप्रति सामना होता ही रहता है। इस अध्याय में हम विशेष रूप से इन बातों से इन बातों पर ध्यान देंगे :

- कीमत स्तर क्या होता है? तथा उसे कैसे मापा जाता है?
- मुद्रास्फीति से क्या अभिप्राय है?
- मुद्रास्फीति के समाज के विभिन्न वर्गों तथा सामान्य अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ते हैं?
- मुद्रास्फीति विरोधी नीतियाँ अथवा मुद्रास्फीति के उपाय; तथा
- मुद्रास्फीति और बेरोज़गारी के बीच संबंध का फिलिप्स वक्र के माध्यम से विश्लेषण।

प्रस्तुत इकाई में इन प्रश्नों पर बहुत ही सहज भाव से चर्चा करेंगे।

19.1 प्रस्तावना

हम प्रायः समाचार पत्रों में मुद्रास्फीति के बारे में कुछ न कुछ पढ़ते ही रहते हैं। इस विषय के इतने महत्त्व का एकमात्र कारण यह है कि अनियंत्रित मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था पर बुरे प्रभाव डालती है। अर्थव्यवस्था ही नहीं समाज के अधिकतर सदस्यों को इसके बुरे परिणामों को भुगतना पड़ता है। प्रश्न यह है कि मुद्रास्फीति हमारे दैनिक जीवन को किस प्रकार प्रभावित करती है? आइए इस बात को एक परिवार के उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें। मुद्रास्फीति का सीधा अर्थ है वस्तुओं तथा सेवाओं की कीमतों में वृद्धि। हर परिवार

अपनी सीमित आय से वस्तुओं एवं सेवाओं की कुछ निश्चित मात्राएँ खरीदता है। पर कीमत वृद्धि इस प्ररिवार को पहले जितनी ही मात्रा में वही वस्तुएँ खरीदने योग्य नहीं छोड़ती। या फिर परिवार को अपना उपभोग पुराने वास्तविक स्तर पर बनाए रखने के लिए अब अधिक रुपये व्यय करने पड़ते हैं। मान लीजिए एक परिवार की आय 100 रुपये है और वह कोई बचत नहीं करता तथा एक ही वस्तु की 25 इकाइयाँ 4 रुपये प्रति इकाई कीमत पर खरीदता है। अब यदि कीमत बढ़कर 5 रुपये हो जाती है वह परिवार केवल 20 इकाइयाँ ही खरीद पाएगा। उपभोग स्तर बनाए रखने के लिए अब उसे 125 रुपये खर्च करने पड़ेंगे। अतः मुद्रास्फीति के कारण परिवार की क्रय–शक्ति कम हो जाती है। उसकी आमदनी अब पहले जितनी वस्तुएँ खरीदने के लिए पर्याप्त नहीं रहती।

हमारे उदाहरण में परिवार केवल एक ही वस्तु का उपभोग करता है, पर वास्तव में हम कितनी ही वस्तुओं तथा सेवाओं का प्रयोग करते हैं। केवल एक वस्तु की कीमत में वृद्धि का संभवतः परिवार के उपभोग पर कोई विशेष दुष्प्रभाव नहीं पड़े क्योंकि यदि एक वस्तु की कीमत बढ़ती है तो कुछ की कम हो सकती है। अतः मुद्रास्फीति का सही असर तो तभी पता चलेगा जब हम परिवार द्वारा प्रयुक्त सभी वस्तुओं ओर सेवाओं की कीमतों का हिसाब लगा लें। दूसरे शब्दों में, हमें सामान्य कीमत स्तर के परिवर्तन का आकलन करना होगा। अतः मुद्रास्फीति को ठीक से समझने से पूर्व हमारे लिए कीमत तथा कीमत स्तर और इनके परिवर्तन के बारे में जान लेना आवश्यक है। भाग 19.2 में इन्हीं बातों पर विचार किया गया है।

19.2 कीमत, कीमत-स्तर तथा इनका माप

कीमतें क्या होती हैं? कीमत स्तर से हमारा क्या अभिप्राय है? दोनों में क्या अंतर है? कीमत स्तर को कैसे मापा जा सकता है? इस भाग में हम इन्हीं बातों पर चर्चा कर रहे हैं।

सरल शब्दों में, किसी वस्तु या सेवा की एक इकाई के लिए चुकाई गई रुपयों की संख्या ही उसकी कीमत है। दूसरे शब्दों में, एक मौद्रिक अर्थव्यवस्था में किसी चीज़ की एक इकाई के क्रय–विक्रय में जितने रुपये लगते हैं उन्हीं रुपयों की संख्या उस वस्तु की कीमत होगी।

कीमत रतर, एक वस्तु नहीं बल्कि वस्तुओं व सेवाओं के एक निश्चित समूह की कीमत से जुड़ा है। अतः हम जब भी कीमत स्तर के परिवर्तन की बात करते हैं तो वस्तुओं व सेवाओं के उसी समूह के संदर्भ में ही करते हैं। वस्तुएँ अलग–अलग इकाइयों में आती हैं; उनकी कीमतें भी भिन्न होती हैं। अतः समूह की कीमत जानने के लिए हमें उस समूह के घटकों का कोई साँझा मापदण्ड निर्धारित करना होगा। इसी कार्य के लिए कीमत–सूचकांक का प्रयोग होता है। यद्यपि आपका सांख्यिकी पाठ्यक्रम इस विषय में अधिक विस्तृत जानकारी प्रदान करेगा, पर सूचकांकों संबंधी काम चलाऊ जानकारी यहाँ भी दे रहे हैं।

19.2.1 सूचकांक क्या होता है?

सूचकांक परस्पर संबंधित विभिन्न चरों के किसी समूह के परिमाण स्तरों का दो या अधिक समय बिंदुओं पर तुलना करने में काम आते हैं। अतः कीमत सूचकांक किसी वस्तुओं के समूह की कीमतों (में परिवर्ततन) की तुलना करने में काम आते हैं। सामान्यतः हम किसी एक अवधि के कीमत स्तर को (आधार) 100 मानकर अन्य सभी अवधियों में कीमत स्तर को इस आधार की तुलना में व्यक्त करते हैं। अगर हम कहें कि पिछले वर्ष की तुलना में थोक कीमत सूचकांक बढ़ गया है तो इसका अर्थ होगा कि हमने पिछले वर्ष को आधार माना है। अतः उसका सूचकांक 100 है। इस वर्ष का अंक 100 से अधिक या कम हो तभी हम कीमत स्तर की वृद्धि या कमी को दिखा पाएँगे।

किसी वस्तु की चालू कीमत तथा आधार वर्ष की कीमत के अनुपात को 100 से गुणा कर

हम सबसे सरल कीमत सूचक ज्ञात कर सकते हैं :

$i_{t}, 0 = 100(Px/P)$ ..(1) $i_{t,o} = 100(p_t/p_o)$ .... (2)

यहाँ p_t तथा p_o चालू व आधार कीमते हैं।

यदि एक किलो आलू की कीमत 1995 में आठ रुपये थी तथा 1996 में बढ़कर 10 रुपये हो गई तो आलू का कीमत सूचकांक इस प्रकार होगा :

I1995, 1996 =100(10/8) = 125

यह सूचकांक आलू कीमतों में 25 प्रतिशत वृद्धि का परिचायक है। अर्थात हमें अपने आलू के उपभोग को पुराने स्तर पर बनाए रखने के लिए अब उसपर 25 प्रतिशत अधिक राशि खर्च करनी होगी।

बोध प्रश्न 1

1) कीमत का अर्थ है? कीमत स्तर बताता है?

....

....

....

....

....

2) सूचकांक क्या होता है?

....

....

....

....

....

19.3 मुद्रास्फीति की परिभाषा

कीमत और कीमत स्तर की परिभाषाओं के बाद अब हम मुद्रास्फीति के बारे में चर्चा कर रहे हैं। मुद्रास्फीति को सामान्य कीमत स्तर मे निरंतर वृद्धि की प्रवृत्ति कहा जाता है। यहाँ वृद्धि में निरंतरता का बहुत महत्त्व है क्योंकि यदि कीमत स्तर आज बढकर कल वापस गिर जाए तो इसे अल्पकालीन उतार–चढाव ही कहा जाएगा। 'सामान्य कीमत स्तर' का भी इस परिभाषा मे बहुत महत्त्व है। इस बात की काफी संभावना है कि समय के साथ–साथ जहॉ कुछ वस्तुओं की कीमतें बढती हैं वही कुछ की कीमते शायद कम भी हो रही हों। किन्तु यहाँ हमारा अभिप्राय वस्तुओं के उस समूह के सामूहिक कीमत स्तर में निरतर वृद्धि से है। कई बार यह भी संभव है कि देश के सारे उत्पादन के बहुत छोटे से अश की कीमतों में वृद्धि हो और उसका सारी अर्थव्यवस्था की औसत कीमत स्तर पर कोई विशेष प्रभाव न पडे। पर जब हम मुद्रास्फीति की चर्चा करते हैं तो हम पूरे अर्थव्यवस्था में कीमत वृद्धि की निरंतर प्रवृत्ति को ही लेते हैं, किसी एक वस्तु या किसी छोटे से समूह के विषय में नहीं। मुद्रास्फीति की एक और भी विशेषता होती है। कई बार यह खुले रूप में स्पष्ट दिखाई नहीं देती। उदाहरण के लिए यदि अर्थव्यवस्था में कुछ वस्तुओं की कीमतों

पर नियंत्रण लागू हों, या फिर भारत की सार्वजनिक वितरण प्रणाली की भाँति खुले बाज़ार की कीमतों से कम पर ये वस्तुएँ राशन में उपलब्ध कराई जा रही हों, तो भी मुद्रास्फीति का सही प्रभाव दिखाई नहीं पड़ता। ऐसी स्थिति में हम यह कह सकते हैं कि अर्थव्यवस्था में दबी या छुपी हुई मुद्रास्फीति विद्यमान है। ऐसी स्थिति में राशन की दुकान की कीमतें नहीं बल्कि खुले बाज़ार की ऊँची कीमतें ही मुद्रास्फीति दर का कुछ अनुमान लगाने में सहायक हो सकती हैं।

हमने प्रस्तावना में इस बात की ओर इशारा किया था कि निश्चित आय वाले परिवारों पर मुद्रास्फीति का दुष्प्रभाव पड़ता है। कुछ मामलों में यह भी संभव है कि कुछ समय वर्गों पर मुद्रास्फीति का कोई प्रभाव ही न पड़े और कुछ को इससे लाभ भी हो। भाग 19.4 में हम इन्हीं बातों पर चर्चा कर रहे है।

19.4 समाज और अर्थव्यवस्था पर मुद्रास्फीति के प्रभाव

मुद्रास्फीति समाज के विभिन्न वर्गों पर भिन्न–भिन्न प्रभाव डालती है। गरीब और निश्चित आय वर्गों पर इसके प्रभाव सबसे अधिक बुरे रहते हैं। उदाहरण के लिए भारत में ही कुल जनसंख्या का एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसे दिहाड़ी मज़दूरों का है जो अन्य व्यक्तियों के खेतों और कारखानों में काम करते हैं और उन्हें काम या दि के अनुसार मजदूरी मिलती है। खेती के क्षेत्र में तो ये दिहाड़ी के अवसर भी साल में दो–चार बार, हफ्ते दस दिन तक सीमित रहते हैं। अतः व्यापक बेरोज़गारी से ग्रस्त हमारे देश में मज़दूरी की दर चाहे जितनी भी कम हो उसपर काम करने के इच्छुक बहुत से लोग कतार बाँधे खेड़े हुए हुए मिल ही जाते हैं। मालिकों की तुलना में मज़दूरों की सौदेबाजी करने की क्षमता बहुत ही सीमित रहती है। मुद्रास्फीति के समय मज़दूर इस स्थिति में नहीं होते कि अपने हितों की रक्षा के लिए अपनी मज़दूरी बढ़वा सकें। यद्यपि सरकार न्यूनतम मज़दूरी दर निश्चित करती है पर इस दर में परिवर्तन बहुत समय बाद ही किया जाता है। बहुत से क्षेत्रों में तो ये दरें लागू ही नहीं हो पाती। यदि किसी दर्जी को प्रति कपड़ा बारह रुपया सिलाई मिलती है तो मुद्रास्फीति के जमाने में उसके बारह रुपयों की क्रय–शक्ति निरंतर कम होती जाएगी। गरीब वर्ग की एक और भी समस्या है कि उनके पास बचत इकट्ठा होने की नोबत ही नहीं आती। अतः वे बुरे वक्त में पुरानी बचत का आसरा भी नहीं ले पाते।

समाज में कुछ वर्ग ऐसे भी होते हैं जिन्हें मुद्रास्फीति से लाभ होता है या जो कम से कम अपने पुराने वास्तविक आय स्तर को बनाए रखने में सफल रहते हैं। संगठित क्षेत्र के मज़दूर और सरकारी कर्मचारी महँगाई भत्ते आदि के माध्यम से मुद्रास्फीति का काफी हद तक सामना कर लेते हैं। आवश्यक वस्तुओं की कमी के दौर में कीमतें बढ़ाकर व्यापारी वर्ग तो मुद्रास्फीति से फायदा उठाने में भी कामयाब रहता है। अतः हम कह सकते हैं कि मुद्रास्फीति का सबसे बुरा प्रभाव गरीब, निश्चित आय कमाने वाले और असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले मज़दूरों पर पड़ता है। समाज के अन्य वर्गों पर ये दुष्प्रभाव प्रायः बहुत कम रहता है। कुलमिलाकर मुद्रास्फीति से समाज में आमदनी का पुनः वितरण कुछ इस तरह से होता है कि अमीर और अमीर हो जाते हैं तथा गरीब और गरीब हो जाते हैं।

19.5 मुद्रास्फीति के विभिन्न प्रकार

कीमत वृद्धि की तीव्रता अथवा दर के अनुसार हम मुद्रास्फीति के तीन वर्ग बना सकते हैं। ये हैं : साधारण मुद्रास्फीति, द्रुत मुद्रास्फीति, तथा अति मुद्रास्फीति (Moderate, galloping and hyper inflation)

साधारण मुद्रास्फीति में कीमतें लगातार पर धीमी रफ्तार से बढ़ती है। वार्षिक मुद्रास्फीति दर सामान्यतः 10 प्रतिशत से कम ही रहती है। अतः कीमत वृद्धि कुछ निश्चित सीमाओं में ही रहती है इस बारे में कोई खास 'अनिश्चितता' नहीं होती।

कीमतों में निरंतर अच्छी खासी वृद्धि को ही द्रुत मुद्रास्फीति कहा जाता है। आमतौर पर 20 से 40 प्रतिशत प्रतिवर्ष की मुद्रास्फीति दर इसी श्रेणी में आती है। कभी–कभी यह दर 200 प्रतिशत तक भी देखी गई है। दक्षिण अमेरिका के ब्राज़ील, और अर्जेन्टीना आदि देशों में 1970 के दशक में 100 प्रतिशत से अधिक मुद्रास्फीति दर देखने में आई थी।

अति मुद्रास्फीति में तो कीमतों की वृद्धि–दर का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। हमें ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं कि डेढ़ ही वर्ष में कीमत सूचकांक 100 से बढ़कर 10,000,000,000 हो गया। ऐसी स्थिति में मुद्रा विनिमय के माध्यम के रूप में भी अपनी मान्यता खो बैठती है उसे मूल्य का भण्डार कहना तो एक मज़ाक ही हो जाता है। ब्राज़ील में 1980 दशक के पूर्वार्द्ध में इसी प्रकार का अति मुद्रास्फीति का दौर चला था।

बोध प्रश्न 2

1) क्या मुद्रास्फीति समाज के सभी वर्गों पर एक–सा प्रभाव डालती है? यदि नहीं तो इसके कारण बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मुद्रास्फीति के कितने प्रकार होते हैं? उनमें भेद का आधार क्या है? व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

19.6 मुद्रास्फीति के कारण

कीमत वृद्धि किस कारण से आरंभ हुई थी इसी आधार पर हम मुद्रास्फीति के कारणों का वर्गीकरण करते हैं। हमने व्यष्टि अर्थशास्त्र में सीखा था कि कीमत का निर्धारण माँग और पूर्ति के समानता बिन्दु पर होता है। इसी को संतुलन बिन्दु कहते हैं। यदि माँग में वृद्धि हो जाए तो नया संतुलन पहले से अधिक कीमत स्तर पर ही संभव हो पाता है। यदि पूर्ति में संकुचन हो तब भी कीमत बढ़ जाती है। दोनों ही मामलों में कीमत तब तक बढ़ती है जब तक की माँग व पूर्ति पुनः एक समान न हो जाए। पर पहले मामले में कीमत वृद्धि माँग के विस्तार से हुई थी तो दूसरे में पूर्ति का संकुचन ही ऐसी प्रवृत्ति का जन्मदाता बना है। कई बार उत्पादन लागत में वृद्धि के कारण पूर्ति–वक्र ऊपर खिसक जाता है। इससे भी कीमतें बढ़ती हैं।

अतः प्रक्रिया के आरंभिक कारण के आधार पर हम मुद्रास्फीति को माँगजन्य मुद्रास्फीति (demand-pull inflation) तथा लागतजन्य मुद्रास्फीति (Cost-push inflation) में वर्गीकृत कर सकते हैं। यहाँ हम अर्थव्यवस्था की समग्र माँग और समग्र पूर्ति के संदर्भ में ही मुद्रास्फीति की माँग एवं पूर्ति–पक्षों की चर्चा कर रहे हैं।

19.6.1 मुद्रास्फीति : माँग-पक्ष

मुद्रास्फीति के माँग–पक्ष पर वे कारक जिम्मेदार होते हैं तो, पूर्ति स्थिर रहने पर, समग्र माँग को बढ़ाकर कीमत वृद्धि लाते हैं। ये हैं : सरकारी व्यय में वृद्धि, बचत दर में कमी, करों की दर में कमी तथा वे अन्य सभी कारण जो लोगों के पास ज़्यादा प्रयोज्य आय बच जाने देते हों या फिर मुद्रा की पूर्ति बढ़ा देते हों। आइए देखें कि ये सभी कारक किस–किस तरह से कीमत वृद्धि की प्रवृत्तियों को जन्म देते हैं।

क) सरकारी व्यय वृद्धि के कारण मुद्रास्फीति

मान लीजिए कि सरकार ने नई सड़कें बनाने का फैसला किया है। कितने ही बेरोज़गारों को इसमें काम मिलेगा। वे रोज़ी कमाएँगे। अतः लोगों के पास खर्च करने को अधिक पैसा होगा। अर्थव्यवस्था में वस्तुओं की आपूर्ति तो स्थिर हैं, स्वाभाविक है कि इससे अति माँग की स्थिति पैदा हो जाएगी। इससे निपटने के दो ही रास्ते हैं : या तो वस्तुओं का उत्पादन और पूर्ति बढ़ाई जाए, या फिर उनकी कीमतें बढ़ा दी जाएँ। दोनों से ही माँग व पूर्ति का अन्तर समाप्त किया जा सकता है। पर अल्पकाल में उत्पादन वृद्धि संभव नहीं रहती, अतः कीमतें ही बढ़ जाती हैं और समग्र माँग और समग्र पूर्ति में संतुलन लाती हैं। सरकारी व्यय की वृद्धि के फलस्वरूप समग्र माँग (AD) वक्र ऊपर की ओर खिसक जाता है (चित्र 19.1) पर अल्पकाल में पूर्ति स्थिर रहने के कारण केवल कीमत स्तर में ही वृद्धि होती है। इससे वास्तविक Y पर ही रहती है।

चित्र 19.1

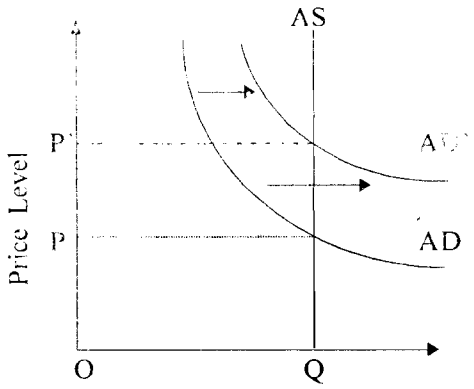

Aggregate Demand and Supply

चित्र 19.1 में यह दिखाया गया है कि प्रारंभ में समग्र माँग AD तथा समग्र आपूर्ति AS थीं। अतः सारी उत्पादित मात्रा OQ को लोग OP कीमत पर खरीद लेते थे। सरकारी व्यय की वृद्धि से समग्र माँग-वक्र ऊपर की ओर AD¹ पर पहुँच जाता है। परिणामस्वरूप नया संतुलन भी पुरानी AS तथा नई AD के सम्मिलन से होता है। पर नए संतुलन बिन्दु पर उत्पादन OQ ही रहता है. केवल कीमत बढ़कर OP¹ हो जाती है।

ख) केन्ज़ीय मुद्रास्फीति अन्तराल

केन्ज़ का मुद्रास्फीति अन्तराल थोड़ा अलग है लेकिन संबंधित है। केन्जीय सिद्धांत निवेश राष्ट्रीय आय निर्धारण में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। केन्ज़ीय व्यवस्था में अर्थव्यवस्था को तीन क्षेत्रों में बाँटा गया है : परिवार, सरकार तथा निजी क्षेत्र। परिवार श्रम व साधन सेवाओं से आय प्राप्त करते हैं; उसमें से एक भाग उपभोग पर व्यय करते हैं उपभोग और शेष बचत करते हैं। निजी क्षेत्र वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करता है। लाभ कमाता है तथा उसका एक भाग नई मशीनें खरीदकर निवेश करते हैं। सरकार दोनों ही क्षेत्रों से कर वसूलती है और उस राशि से सडक निर्माण तथा अन्यान्य सार्वजनिक सेवाओं पर व्यय करती है। समग्र राष्ट्रीय आय (Y) इन्ही तीन क्षेत्रों में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का मूल्य है। दूसरी ओर, व्यय उपभोग (C), निवेश (I) तथा सरकारी व्यय

(G) का योग है। केन्ज़ ने राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का संतुलन उसी बिन्दु पर माना है जहाँ कुल व्यय यानि C+I+G का योग आय यानि Y के समान होता है (अगर सरकारी क्षेत्र न हो तो उस अवस्था में कुल आय यानि Y केवल C+I के समान होगी)। हमने चित्र 19.2 में यही संतुलन दर्शाया है। C+I+G रेखा 45° की रेखा काटती है। 45° की रेखा वस्तुतः आय = व्यय रेखा ही है। यदि सरकारी व्यय बढ़कर G' हो जाए तो हमारा कुल व्यय भी C+I+G' हो जाएगा। अब नया संतुलन बिन्दु भी पहले की अपेक्षा ऊँचे आय–व्यय स्तरों पर ही संभव हो पाएगा। पर यदि आय का स्तर बढ़ा पाना संभव न हो तो प्रारंभिक आय स्तर पर हमें MN के समान अति व्यय–या अति माँग का सामना करना पड़ेगा। इसी को हम मुद्रास्फीति अन्तराल कहेंगे, क्योंकि इससे कीमतें बढ़ने की संभावना बढ़ जाती है।

चित्र 19.2

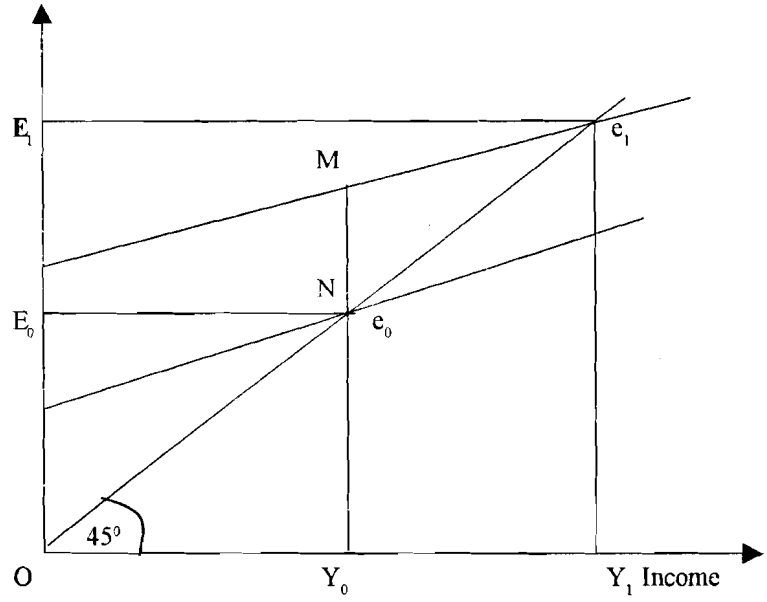

चित्र 19.2 में दिखाया गया है कि सरकारी व्यय G से बढ़कर G_1 होने पर C+I+G भी C+I+G_1 तक उठ जाता है। शुरू में C^0 बिन्दु पर संतुलन था, वहाँ आय Y_0 तथा व्यय E_0 था। पर नए संतुलन बिन्दु e_1 का अर्थ है कि समग्र व्यय व मौद्रिक आय क्रमशः E_1 व Y_1 हैं। पर यदि वास्तविक आय नहीं बढ़ पाती (यानि Y_0 से Y_1 पर नहीं जाती) तो अतिरिक्त माँग के दबाव से कीमतों में ही वृद्धि होती है। इसीजिए MN मुद्रास्फीति अंतराल कहलाता है।

ग) मुद्रास्फीति बढ़ने से पैदा हुई मुद्रास्फीति

यह भी विचारक्रम लगभग पहले जैसा ही है। मुद्रा की आपूर्ति बढ़ने पर लोगो के हाथों में खर्च करने के लिए रकम बढ़ जाती है। अतः एक अति माँग की अवस्था का जन्म हो जाता है। यहाँ भी असंतुलन की समाप्ति के लिए कीमतों का बढ़ना ही एकमात्र स्वाभाविक विकल्प बच रहता है, क्योंकि इस स्थिति में भी वास्तविक उत्पादन का स्तर अपरिवर्तित रहता है। (देखिए चित्र 19.2)

19.6.2 मुद्रास्फीति : आपूर्ति-पक्ष

माँग-वक्र के स्थिर रहने पर आपूर्ति वक्र के परिवर्तन के परिणामस्वरूप कीमत स्तर की वृद्धि को ही हम पूर्ति-पक्षीय मुद्रास्फीति का नाम देते हैं। इसके तीन भेद होते हैं लागतजन्य मुद्रास्फीति, लाभ-जन्य मुद्रास्फीति तथा आपूर्ति मुद्रास्फीति।

क) लागत-जन्य मुद्रास्फीति

लागत-जन्य मुद्रास्फीति उत्पन्न होती है जब बाज़ार शक्ति का प्रयोग कर श्रमिक

संघ अपनी मज़दूरी दर को बढ़ाने और फर्में अपने उत्पादन के दाम बढ़ाने में सफल हो जाते हैं। मज़दूरी बढ़ने के कारण उत्पादन की प्रति इकाई श्रम लागत बढ़ाने में सफल हो जाते हैं। मज़दूरी बढ़ने के कारण उत्पादन की प्रति इकाई श्रम लागत बढ़ जाती है और इसे पूरा करने के लिए उत्पादक कीमतें बढ़ा देते हैं। कीमतें बढ़ने से मज़दूर और अधिक मज़दूरी की माँग करते हैं और उत्पादक फिर कीमतें बढ़ा देते हैं। मज़दूरी दर में निरंतर वृद्धि की यह शृंखला कीमतों में निरंतर वृद्धि लाती है। ऐसी मुद्रास्फीति को मज़दूरीजन्य मुद्रास्फीति कहते हैं।

ख) लाभजन्य मुद्रास्फीति

जब फर्में अपने लाभ बढ़ाने हेतु कीमतें बढ़ाती है तो न केवल सभी कीमतें लगती हैं, मज़दूर भी अधिक मज़दूरी की माँग करने लगते हैं। मज़दूरी बढ़ने और आगतें महँगी होने के कारण उत्पादक और कीमतें बढ़ा देते हैं। इस तरह कीमत–मज़दूरी वृद्धि की नई तरंगें आरंभ हो जाती हैं। इसे ही लाभ–जन्य मुद्रास्फीति का नाम दिया जाता है।

इन दोनों ही अवस्थाओं में हर उत्पादन मात्रा पहले की अपेक्षा ऊँची कीमतों पर ही बाज़ार में उपलब्ध हो पाएगी। चित्र 19.3 में समग्र आपूर्ति–वक्र बाईं ओर खिसक जाती है। यह दर्शाती है कि अब उत्पादक Y_1 उत्पादन के लिए P_1 के स्थान पर P_2 कीमत की माँग करेगा। अतः संतुलन कीमत P_1 अब P से अधिक होगी। यही नहीं संतुलन उत्पादन तथा आय का स्तर Y_1 भी Y से नीचा ही रहता है।

मज़दूरीजन्य मुद्रास्फीति तभी संभव हो पाती है जबकि श्रमिक संगठित हो तथा उनके संगठन अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में मज़दूरी वृद्धि करवा पाने में सक्षम हो। भारत में श्रम संगठन इतने व्यापक नहीं हैं और इसीलिए यहाँ के आँकड़ों से मज़दूरीजन्य मुद्रास्फीति की कोई साक्षी नहीं मिल पाती।

इसी तरह से फर्में भी तभी मनमाने ढंग से कीमतें बढ़ाने में सफल हो पाती हैं जबकि वस्तु बाज़ार में काफी अपूर्णताएँ हों। एक प्रतियोगी फर्म के लिए अपनी कीमत बढ़ाना सहज नहीं होता पर एकाधिकारी एवं अल्पाधिकारी बाज़ारों में उत्पादकों को कीमत बढ़ाने पर बिक्री कम होने का कोई डर नहीं रहता। अतः वे बड़े आराम से कीमतें बढ़ा देते हैं।

चित्र 19.3

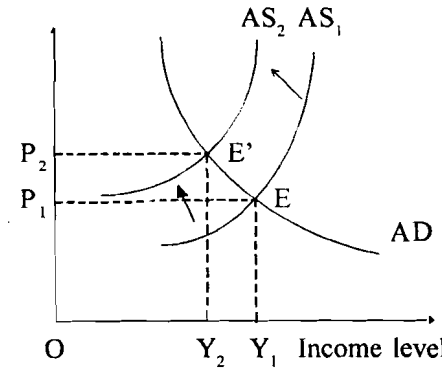

चित्र 19.3 उत्पादन लागतों की वृद्धि समग्र पूर्ति-वक्र को ऊपर खिसका देती है। अब AS_1 के स्थान AS_2 पर ही पूर्ति का स्तर दर्शाता है। उत्पादक अब उसी उत्पादन स्तर के लिए अपेक्षाकृत अधिक कीमत माँगते हैं। पहले वे Y_1 मात्रा P_1 कीमत पर बेचने को तैयार थे पर अब वे P_2 कीमत चाहते हैं। नया संतुलन E_1 पर होगा जहाँ नई संतुलन कीमत P_1 का निर्धारण होता है।

ग) **आपूर्ति-आघात मुद्रास्फीति**

कई बार अचानक आपूर्ति में भारी गिरावट के कारण भी कीमत स्तर बहुत ऊपर उठ जाता है। इस गिरावट के कारणों पर फर्म या श्रमिकों का कोई नियंत्रण नहीं रहता। अचानक प्राकृतिक आपदाओं के कारण फसल नष्ट होने से आपूर्ति अभाव की ऐसी स्थिति पैदा हो जाती है। इसी तरह 1973 तथा 1979 में तेल निर्यातक संघ द्वारा पैट्रोलियम कीमतों की वृद्धि से विश्व भर के देशों में मुद्रास्फीति फैल गई थी। यह सभी आपूर्ति–आघात मुद्रास्फीति के उदाहरण हैं।

19.7 संरचनात्मक मुद्रास्फीति

अभी तक हमने मुद्रास्फीति के जिन कारणों एवं सिद्धांतों की चर्चा की है, वे सभी विकसित औद्योगिक राष्ट्रों के परिप्रेक्ष्य में विकसित हुए हैं। ये भारत तथा अन्य विकासशील देशों में उतनी अच्छी तरह लागू नहीं हो पाते। विकसित पश्चिमी देशों के विपरीत इन देशों में पूँजी, विदेशी मुद्रा (आवश्यक मशीनों तथा सामग्रियों के आयात हेतु), भूमि तथा बुनियादी सुविधाओं (सड़क, रेलें, बिजली आदि) का अभाव ही रहता है। साथ ही साथ विशाल जनसंख्या का खेती पर ही आश्रित होना कृषि भूमि का व्यापक विखण्डन करता है। भूस्वामित्व की विकृत प्रणालियाँ, तकनीकी पिछड़ापन और कृषि निवेश की नीची दर भी यहाँ समस्याओं को और गहन कर देती है। कम विकसित देशों की ये खास विशेषताएँ हैं। इन संरचनात्मक विशेषताओं के आधार पर ही संरचनात्मक मुद्रास्फीति का सिद्धांत विकसित हुआ है। आइए देखें कि ये कारक किस प्रकार कार्य करते हैं।

क) **खाद्यान्न का अभाव**

ज़्यादातर गरीब देशों की जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि से ही अपनी रोज़ी–रोटी कमाता है। कहीं–कहीं कुछ उद्योगों के विकास के कारण कुछ लोगों को शहरी क्षेत्रों में भी काम मिलने लगा है। पर कृषि भूमि के स्वामित्व में बहुत अधिक असमानताएँ तथा काश्तकारी प्रणाली, पुरानी घिसी–पिटी तकनीकों तथा कृषि निवेश के अभाव की संरचनात्मक बाधाओं के कारण बढ़ते हुए शहरीकरण व जनसंख्या की खाद्यान्न की माँग को पूरा कर पाना संभव नहीं हो पाता। यही नहीं, कृषि की मौसम पर निर्भरता इतनी अधिक है कि कभी सूखा तो कभी बाढ़ के कारण से भी अनाज की सारी कमी हो जाती है। अतः अनाज के दाम बहुत तेज़ी से बढ़ते हैं और यही मुख्य मजूरी–वस्तु भी है। इसी के कारण अन्य वस्तुओं के दामों में भी वृद्धि का सिलसिला चल पड़ता है। इसीलिए बहुत से अर्थशास्त्री खाद्यान्न कीमतों को ही अल्प विकसित देशों में मुद्रास्फीति का प्रमुख कारक मानते हैं।

ख) **विदेशी मुद्रा का अभाव**

पिछड़े देशों को अपने विकास कार्यों के लिए मशीनों, आवश्यक साज़ सामान व कच्चा माल व कहीं–कही तो खाद्यान्न एवं अन्य उपभोग्य वस्तुओं के आयात पर भारी खर्च करना आवश्यक हो जाता है। पर वस्तुओं की क्वालिटी में कमी आदि के कारण इन देशों की निर्यात आय–आयात आवश्यकता की तुलना में बहुत ही कम रहती है। अतः इन देशों में विदेशी मुद्रा की कमी बनी ही रहती है और घरेलू क्षेत्र में वस्तुओं का अभाव आयात द्वारा पूरा कर पाना संभव नहीं हो पाता। ऐसी स्थिति में कुछ वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि धीरे–धीरे अर्थव्यवस्था में कीमत वृद्धि ले आती है।

यही नही, साधनों का काफी बड़ा भाग भूमि, सोना आदि जैसे अनुत्पादी निवेश में लग जाता है। अन्यथा यह निवेश नए उद्योग, नई सड़कें, मशीनें, सिंचाई की सुविधाएँ आदि विकास कार्यों में लगाया जा सकता है, जिससे इन देशों के विकास की दर ऊपर उठ सकती थी। इस तरह से संरचनात्मक कारक अल्प विकसित देशों में मुद्रास्फीति की व्याख्या करते

19.8 मुद्रास्फीति-विरोधी नीतियाँ

अब हम यह तो समझ ही गए हैं कि मुद्रास्फीति के मुख्य–मुख्य कारण क्या होते हैं। आइए अव इसको दूर करने के उपायों की ओर भी कुछ ध्यान दें। अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति को किस प्रकार नियंत्रित किया जा सकता है? इस समस्या के समाधान के लिए इसके कारणों को स्पष्टतः जान लेना आवश्यक होता है। हमें यह पता होना चाहिए कि यह मुद्रास्फीति माँग–पक्ष के कारको से आरंभ हुई है कि पूर्ति–पक्ष से। ऐसा क्यों होता है? यही बात हम समझने का प्रयास कर रहे हैं :

मान लीजिए कि माँग में वृद्धि के कारण मुद्रास्फीति प्रारंभ हुई है। अर्थात् लोगों के पास क्रय शक्ति बढ़ गई है पर उत्पादन या पूर्ति पूर्ववत् ही हैं। इस अवस्था में मुद्रा स्फीति को नियंत्रण में लाने के लिए सबसे अच्छा उपाय तो यही होगा कि किसी तरह से लोगों के पास उपलब्ध अतिरिक्त प्रयोज्य आय को कम किया जाए। सरकार यह कार्य दो तरह से कर सकती है : मुद्रा की पूर्ति घटा कर अथवा करों में राहत का लालच देकर लोगों को बचत करने के लिए प्रोत्साहन देकर। प्रत्यक्षतः मुद्रा की पूर्ति घटाने से वस्तुओं की माँग भी सीधे से ही घट जाती है। पर, बचत प्रोत्साहनों द्वारा उन्हीं लोगों का उपभोग कम होताहै जिनके पास काफी अतिरिक्त धनराशि हो। इससे भी समग्र माँग कम हो जाती है तथा कीमतों पर अंकुश लगता है। चित्र 19.4 में हम यही दिखा रहे हैं कि पूर्ति के AS_1 स्तर पर बने रहते हुए समग्र माँग AD_1 से बढ़कर AD_2 होने पर कीमतें बढ़ती हैं, लेकिन मांग पर नियंत्रण करने के प्रयास इसे पुनः AD_1 तक पहुँचा देते हैं।

चित्र 19.4

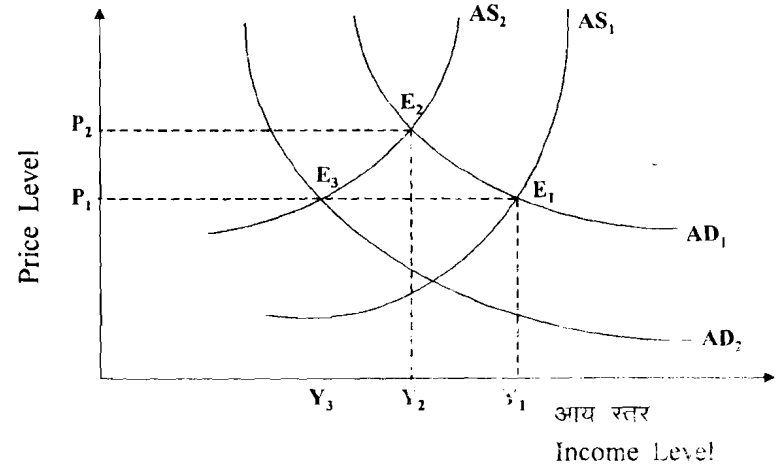

चित्र 19.4 आरंभिक समग्र भाग, AD_1 और समग्र आपूर्ति, AS_1 वक्र E_1 पर काटते (intersect) हैं जहां आय का स्तर Y_1 है और कीमतों का स्तर P_1 है। परन्तु उत्पादन लागत मे वृद्धि समग्र आपूर्ति को AS_2 की ओर भेजती है। इसके कारण कीमत P_1 से बढ़कर P_2 हो जाती है। इन उच्च कीमतो पर केवल आय का Y_2 स्तर उत्पन्न होगा क्योंकि उपभोक्ता सामान और सेवाओं की अधिक मात्रा खरीद नहीं सकते है। इन परिस्थितियों के अतर्गत मांग प्रबंधन नीतियों को स्वीकार करने से समग्र मांग AD_2 तक हो जाएगी। इससे कीमतें पुराने स्तर P_1 चली जाएंगी परंतु Y_3 पर आय का स्तर कम हो जाएगा।

परन्तु यदि मुद्रास्फीति का मूल कारक समग्र आपूर्ति का कम होना रहा हो तो मॉग पर नियत्रण के प्रयास सारी अर्थव्यवस्था को ही विकृत कर देंगे। पूर्ति-वक्र AS_1 से AS_2 होने पर मॉग के सकुचन की नीतियो से यद्यपि कीमतें तो कम हो जाएँगी पर उत्पादन मे भी भारी कमी का सामना करना पड़ेगा। अतः श्रम की मांग कम होने से बेरोजगारी की समस्या गंभीर रूप धारण कर लेगी। अतः जब पूर्ति-पक्ष के कारकों से मुद्रास्फीति पैदा हो तो उसका निदान तथा उपचार की खोज भी पूर्ति-पक्षीय कारकों मे ही होनी चाहिए। यद्यपि सरकार

अल्पकाल में उत्पादन वृद्धि तो नहीं कर सकती पर लागत वृद्धि के दुष्प्रभावों को अपनी नीतियों द्वारा काफी हद तक सीमित अवश्य कर सकती है।

इस दृष्टि से बिक्री कर, उत्पादन शुल्क आदि अप्रत्यक्ष करों में कमी से उत्पाद लागतें तो कम होती ही हैं, साथ ही वस्तुओं के बाज़ार मूल्य भी कम होने लगते हैं। इससे फर्में पहले की अपेक्षा ज़्यादा माल बेचने में सफल रहती है। पर, फसल खराब होने की दशा में तो सरकार अपने सुरक्षित भण्डार से *सार्वजनिक वितरण प्रणाली* में अधिक मात्रा में अनाज भेजकर ही इस समस्या पर काबू पा सकती है। यहाँ उन अन्य कारकों की चर्चा कर पाना संभव नहीं है जिनसे अब मुद्रास्फीतिकारी नीतियों की सफलता का मूल्यांकन संभव होता है।

19.9 अव-स्फीति

अब हम अवस्फीति के प्रश्न पर आते हैं। *अवस्फीति* वह स्थिति है जब कीमतों में निरंतर गिरने की प्रवृत्ति हो जाती है। इसका एक मुख्य कारण तो समग्र माँग का आपूर्ति से कम होना है। इस अवस्फीति की दशा में केवल कीमतें ही नहीं गिरती बल्कि साथ–साथ उत्पादन भी कम होता है। देशों में बेरोज़गारी बढ़ती है तथा सभी आर्थिक गतिविधियों में शिथिलता आ जाती है। सन् 1929–33 की व्यापक मंदी पूँजीवादी देशों में ऐसी ही भारी अवस्फीति का उदाहरण रहा है। उन वर्षों में कीमतें ही नहीं गिरीं, साथ–साथ इन देशों में बेरोज़गारी अति भयावह रूप धारण कर गई थी तथा आय तेज़ी से गिरी।

19.10 मुद्रास्फीति जनित मंदी

केन्ज़ ने जिस प्रकार की परिस्थितियों का विश्लेषण किया था, उनमें तो मुद्रास्फीति अन्तराल से अल्पकाल में ही वास्तविक उत्पादन तथा रोज़गार में वृद्धि हो जाती है। शुरू में कीमतें कुछ बढ़ती हैं पर शीघ्र ही उत्पादन वृद्धि से कीमतों पर अंकुश लग जाता है। अतः केन्ज़ीय परिस्थितियों में मुद्रास्फीति के कारण रोज़गार तथा उत्पादन और वास्तविक आय में सुधार होता है। पर 1976 के दशक में विश्व के कई देशों में कीमतों तथा बेरोज़गारी में साथ–साथ वृद्धि ने अर्थशास्त्रियों को काफी परेशानी में डाल दिया था। वह स्थिति जबकि कीमत वृद्धि के साथ–साथ रोज़गार स्थिर रहता है या फिर गिरने लगता है, मुद्रास्फीति मंदी कहलाती है। इस प्रक्रिया की व्याख्या कुछ इस प्रकार की जाती है :

अर्थव्यवस्था में अगर मुद्रास्फीति दर 6 प्रतिशत है। इससे यह एक स्वाभाविक अपेक्षा हो जाती है कि कीमतें इसी दर पर बढ़ती रहेंगी। इसी अपेक्षित दर के आधार पर श्रमिक संघ नए वेतनमानों की सौदेबाजी भी कर लेते हैं। उत्पादक भी इसके अनुसार अपनी कीमतें निश्चित करते हैं। पर यदि मुद्रास्फीति दर अचानक 6 प्रतिशत से अधिक हो जाए तो श्रमिकों को लगेगा कि उनका पुराना मज़दूरी समझौता मुद्रास्फीति से बचने के लिए पर्याप्त नहीं रह गया है और ज़्यादा मज़दूरी बढ़ने से वस्तुओं की कीमतें भी और ज़्यादा तेज़ी से बढ़ने की संभावना होगी।

अतः हम कह सकते हैं कि आज की कीमत स्तर के निर्धारण में भविष्य में अपेक्षित कीमत स्तर काफी बड़ी भूमिका अदा करता है। इस विचार के अनुसार मुद्रास्फीतिजनित मंदी स्फीति विरोधी नीतियों तथा अपेक्षित व वास्तविक मुद्रास्फीति की दरों में अंतर का मिला–जुला परिणाम है।

हमने भाग 19.8 में देखा था कि मुद्रास्फीति विरोधी नीतियों के फलस्वरूप कीमतें ही नहीं राष्ट्रीय आय भी कम हो सकती है। पर इन नीतियों के दोनों प्रभाव एक साथ महसूस नहीं होते। अभी ये नीतियाँ अपना प्रभाव डाल ही रही होती हैं कि मुद्रास्फीति की अपेक्षित दर वास्तविक मुद्रास्फीति दर के पास पहुँचने का प्रयास ही कर हरी होती है। यानि मौद्रिक

आय में वृद्धि की मंदगति मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि की और दबाव (जो कि मुद्रास्फीति नियंत्रण में लाने की नीतियों का परिणाम है)। यह वह स्थिति है जब उत्पादन स्तर की अवरुद्धता (Stagnation) तथा बढ़ती मुद्रास्फीति साथ–साथ रहती है।

19.11 मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी : फिलिप्स वक्र

इस भाग में हम यह जानने का प्रयास करेंगे कि क्या मुद्रास्फीति की दर तथा बेरोज़गारी दर के बीच किसी तरह का संबंध है? यदि कोई संबंध है भी तो इस संबंध का स्वरूप कैसा है?

अर्थशास्त्री बहुत समय से मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी के बीच संबंध ढूँढते रहे हैं। एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री ए.डब्ल्यू. फिलिप्स ने मज़दूरी दर की मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी के बीच संबंध का अध्ययन किया। उन्होंने 1861 से 1957 तक के ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के आँकड़ों का अध्ययन किया। इसमें उन्होंने बेरोज़गारी दर तथा मज़दूरी मुद्रास्फीति दर के बीच विपरीत संबंध पाया। हम जानते हैं कि अन्य बातें पूर्ववत् रहने पर, मज़दूरी मुद्रास्फीति से लागतजन्य मुद्रास्फीति का जन्म होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि मज़दूरी–स्फीति तथा सामान्य मुद्रास्फीति में सीधा संबंध है। मज़दूरी–स्फीति और मुद्रास्फीति की दर के बीच सीधे संबंध तथा मज़दूरीस्फीति और बेरोज़गारी के बीच विपरीत संबंध से यह परिणाम निकलता है कि मुद्रास्फीति की दर और बेरोज़गारी के बीच विपरीत संबंध होता है।

हम जानते हैं कि :

मज़दूरी वृद्धि दर α मुद्रास्फीति दर

और मज़दूरी वृद्धि–दर α (1/बेरोज़गारी दर)

इसीलिए

मुद्रास्फीति दर α (1/बेरोज़गारी दर) यहाँ α अनुपातिकता दर्शाता है।

ऐसा हो सकता है। अगर बेरोज़गारी दर कम है और श्रमिक अच्छी तरह संगठित हैं तो वे अधिक आसानी से मज़दूरी वृद्धि की माँग मनवा सकते हैं। बेरोज़गारी कम तथा श्रम बाज़ार में श्रम की कमी आमतौर पर तभी होती है जब वस्तुओं की माँग में वृद्धि हो रही हो तथा खूब मुनाफा हो रहा हो। ऐसे में फर्मों को मज़दूरी बढ़ाने में कुछ खास ऐतराज नहीं होता क्योंकि मुनाफा कमाने के दौर में कोई भी हड़ताल नहीं चाहता। इसके विपरीत ज़्यादा बेरोज़गारी तथा कम माँग एवं कम लाभ की दशा में न तो श्रमिक मज़दूरी बढ़वाने की बात करते हैं और न ही फर्में इसके लिए कभी तैयार हो पाती हैं।

दूसरी व्याख्या श्रम की अति माँग के संदर्भ में है। तेज़ी में जब माँग और लाभ निरंतर बढ़ रहा हो तो यह संभव है कि श्रम की माँग पूर्ति की अपेक्षा अधिक हो जाए। इससे मज़दूरी की दर और साथ–साथ मुद्रास्फीति दर भी बढ़ जाएगी। अतः जैसे–जैसे बेरोज़गारी दर में कमी आती है, मुद्रास्फीति दर बढ़ने लगती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि ये दोनों व्याख्याएँ तेज़ी से मंदी के दोनों ही दौरों में साथ–साथ भी काम कर सकती हैं। ये एक–दूसरे की विकल्प नहीं हैं।

अतः फिलिप्स वक्र एक दाहिनी ओर ढलवाँ वक्र होगा। इसके क्षैतिज–अक्ष पर बेरोजगारी की दर तथा ऊर्ध्व–अक्ष पर मुद्रास्फीति दर दिखाई जाती है। इसका अभिप्राय है कि बेरोजगारी तथा कीमतों के बीच एक प्रकार का लेनदेन (trade off) होता है। यदि सरकार बेरोज़गारी की दर कम करना चाहती है तो उसे मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि स्वीकार करनी होगी। या फिर यदि मुद्रास्फीति की दर कम करनी है तो कुछ बेरोज़गारी स्वीकार करनी

होगी। (देखिए चित्र 19.5)

लेकिन 1970 के दशक में फिलिप्स वक्र की अवधारणा को उस समय धक्का लगा जब पूँजीवादी देशों ने यह अनुभव किया कि उनके यहाँ मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि के साथ–साथ बेरोज़गारी की दर भी बढ़ रही है यानि मुद्रास्फीतिजन्य मंदी (Stagflation) की स्थिति बन गई है।

फिलिप्स वक्र की बहुत सारी आलोचनाएँ हैं लेकिन यहाँ हम केवल दो की चर्चा कर रहे हैं :

पहली आलोचना तो यही है कि फिलिप्स का विश्लेषण अल्पकाल में तो सही हो सकता है पर दीर्घकाल में नहीं। अगर मौद्रिक मज़दूरी दर स्थिर रहते हुए कीमतें बढ़ती हैं तो व्यापारियों को प्रति इकाई उत्पादन पर अधिक मुनाफा मिलता है। अतः कीमत वृद्धि के समय उत्पादक उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन बढ़ाते हैं जिनके दाम और जिनसे लाभ) बढ़ रहे हों। इसके कारण इन उद्योगों में श्रम की माँग बढ़ जाती है। अधिक उत्पादन का अर्थ है अधिक मज़दूरों को काम। पर ऐसा अल्पकाल में ही ठीक है। यही फिलिप्स वक्र संबंध भी है क्योंकि मुद्रास्फीति में वृद्धि बेरोज़गारी में कमी लाती है।

चित्र 19.5

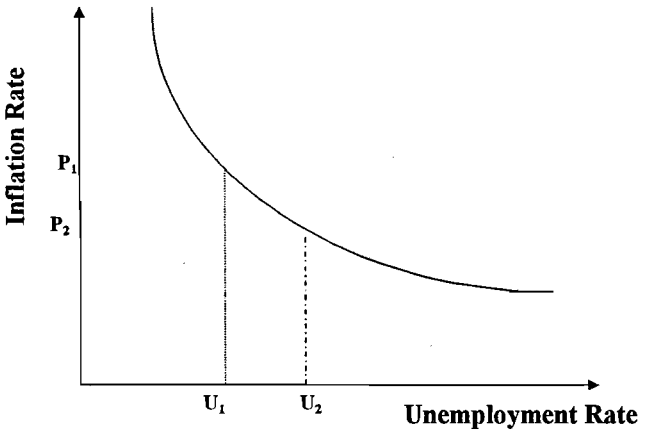

चित्र 19.5 : फिलिप्स वक्र बेरोज़गारी दर तथा मुद्रास्फीति दर के अनुलोम संबंध को दर्शाता है। कीमत वृद्धि दर को P_1 से घटाकर P_2 पर लाने के लिए बेरोज़गारी दर को U_1 से U_2 तक बढ़ने देना पड़ेगा। दूसरे शब्दों में, समाज को बेरोज़गारी घटाने की कीमत उच्च मुद्रास्फीति दर के रूप में चुकानी पड़ती है।

पर दीर्घकालिक व्यवहार बहुत भिन्न होता है। मौद्रिक मज़दूरी स्थिर रहने पर कीमत स्तर बढ़ने का अर्थ होगा वास्तविक मज़दूरी दर, यानि मौद्रिक मज़दूरी तथा सामान्य कीमत स्तर के अनुपात में गिरावट। शीघ्र ही मज़दूर संघों को इस गिरावट की अनुभूति हो ही जाती है तथा वे मज़दूरी स्फीति के अनुपात में मज़दूरी बढ़ाने की माँग शुरू कर देते हैं। अब उत्पादन लागत बढ़ती है तथा उत्पादकों को उत्पादन ज़ारी रखना लाभप्रद नहीं रहता। अतः वे उत्पादन घटाएँगे, जिसके कारण श्रम की माँग व रोज़गार में घटेगा। मुद्रास्फीति दर तो अपने पुराने स्तर पर टिकी रहती है पर बेरोज़गारी दर बढ़ने लगती है। इस तरह से मुद्रास्फीति तथा बेरोज़गारी दरों के बीच लेनदेन का विचार मान्य नहीं रहता। किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि फिलिप्स वक्र उन 96 वर्षों के अनुभव पर आधारित है जिस दौरान दो विश्वयुद्ध तथा प्रौद्योगिकी में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

दूसरी आलोचना इस प्रकार है। फिलिप्स वक्र बेरोज़गारी तथा मुद्रास्फीति की दर बढ़ाने में पूँजी की भूमिका को नज़रअंदाज कर देता है। पूँजीवाद में ज़्यादा से ज़्यादा लाभ कमाने की चाह उत्पादकों को अक्सर पूँजी सघन तकनीकों की ओर खींच ले जाती है। इस कारण से श्रम की आवश्यकता कम रह जाती है, अतः बेरोज़गारी बढ़ती है। इसी समय ये उत्पादक

लाभ बढ़ाने की दृष्टि से 'लागत–जमा–लाभ' की कीमत निर्धारण (mark up pricing) पद्धति को भी बहुत जोरों से अपनाते हैं। इससे स्फीतिकारी प्रवृत्ति जन्म लेती है। इस तरह से भी मुद्रास्फीति एवं बेरोज़गारी में लेनदेन की बात ठीक नहीं जँचती।

इस आलोचना में यह पूर्वधारणा की गई है कि अब प्रौद्योगिक परिवर्तन श्रम की उत्पादिता में तीव्र वृद्धि ला रहे होते हैं तो उसके साथ–साथ वस्तुओं और सेवाओं की समग्र माँग में कोई वृद्धि नहीं होती। पर बढ़ते हुए उपभोक्तावाद तथा विशाल उत्पादन के अनुभव तो इस पूर्वधारणा की पुष्टि नहीं करते।

बोध प्रश्न 3

1) मुद्रास्फीति के विभिन्न कारण बताइए। चित्रों के माध्यम से उनकी व्याख्या करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मुद्रास्फीतिजन्य मंदी का क्या अर्थ है?

.....

.....

.....

.....

.....

3) अवस्फीति क्या होती है?

.....

.....

.....

.....

.....

4) कोई एक ऐसा कारण बताइए जिससे फिलिप्स–वक्र मान्य नहीं रहता?

.....

.....

.....

.....

19.12 सारांश

इस इकाई में हमने सीखा कि कीमत से अभिप्राय वस्तुओं और सेवाओं के बदले में प्राप्त मुद्रा से है। कीमत स्तर एक समग्रवादी विचार है। कीमत स्तर में वृद्धि का अर्थ है कि रुपये की एक इकाई पहले से कम वस्तुएँ और सेवाएँ खरीद सकती है। यह कीमत स्तर

अनेक वस्तुओं और सेवाओं का सामूहिक कीमत स्तर है, इसीलिए इसे एक कीमत सूचकांक द्वारा दिखाना उचित रहता है। सूचकांक चरों के किसी समूह की दो (या अधिक) अवधियों के बीच तुलना करने का माध्यम होता है। कीमत सूचकांक कई प्रकार के होते हैं।

हमने यह भी जाना कि सामान्य कीमत स्तर में निरंतर होने वाली वृद्धि की प्रवृत्ति को ही मुद्रास्फीति कहते हैं। इसका निश्चित आय वर्ग एवं गरीब वर्ग पर गहरा दुष्प्रभाव पड़ता है। इससे अर्थव्यवस्था की संवृद्धि दर धीमी हो जाती है। मुद्रास्फीति की दर के अनुसार ही हम कहते हैं कि किसी देश में सामान्य मुद्रास्फीति चल रही है या फिर अति–मुद्रास्फीति।

मुद्रास्फीति का आरंभ माँग या पूर्ति दोनों ही पक्षों से हो सकता है। माँग–पक्ष में राजकीय व्यय की वृद्धि, करों में छूट तथा मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि आदि शामिल रहते हैं। पूर्ति–पक्षीय कारणों में कच्चे माल के दामों में वृद्धि, सामान्य उपभोग वस्तुओं की कीमतें बढ़ना तथा मज़दूरी व लाभ आदि का बढ़ना शामिल रहता है। हमने यह भी देखा है कि कितनी ही बार ये माँग एवं पूर्ति–पक्षीय कारक विश्व के अल्पविकसित देशों में मुद्रास्फीति की स्थिति को समझा नहीं पाते। उन देशों की अपनी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए संरचनात्मक मुद्रास्फीति की अवधारणा का विकास हुआ है। मुद्रास्फीति विरोधी नीतियों के चयन से पूर्व मुद्रास्फीति के प्रारंभिक कारणों का सही निदान बहुत आवश्यक होता है। तभी अपेक्षित परिणाम प्राप्त हो सकते हैं।

हमने यह भी सीखा है कि कीमतों में निरंतर गिरावट की स्थिति ही अवस्फीति कहलाती है। इसमें आय तथा रोज़गार में भी लगातार कमी आती है। मुद्रास्फीतिजनित मंदी वह दशा है जबकि मुद्रास्फीति की दशा में उत्पादन या तो स्थिर रहे या फिर कम भी हो रहा हो।

अन्ततः हमने फिलिप्स वक्र का विश्लेषण किया है। यह बेरोज़गारी तथा मुद्रास्फीति दरों के बीच एक संबंध बताने का प्रयास करती है। यह देखा गया है कि कुछ दशकों को छोड़कर जिसमें वक्र में निहित संबंध ठीक पाए गए, यह वक्र लगभग निरर्थक ही रहा है। अल्प विकसित देशों में तो बेरोज़गारी एक ऐतिहासिक तथ्य है, जिसका मुद्रास्फीति से खास लेना–देना नहीं है।

19.13 शब्दावली

कीमत स्तर : यह समष्टि अवधारणा है और इसका संबंध वस्तुओं तथा सेवाओं के एक समूह की कीमत से है।

मुद्रास्फीति : सामान्य कीमत स्तर में लगातार वृद्धि या वृद्धि की प्रवृत्ति। इससे अभिप्राय उन सभी वस्तुओं की कीमतों से है जो सूचकांक में शामिल होती है। इसको किसी एक वस्तु या वस्तुओं के किसी विशेष वर्ग जैसे खाद्य–उत्पाद की कीमत में वृद्धि नहीं समझना चाहिए।

अवरुद्ध मुद्रास्फीति : कुछ वस्तुओं की कीमतों से मुद्रास्फीति का सही–सही पता नहीं चलता। इसका कारण कुछ वस्तुओं पर आर्थिक सहायता (subsidy) भी हो सकता है। सरकारें प्रायः कमज़ोर वर्गों की मुद्रास्फीति से रक्षा करने के लिए इस प्रकार के कदम उठाती हैं।

अति-मुद्रास्फीति : इसमें मुद्रास्फीति की वार्षिक दर में अभूतपूर्व वृद्धियाँ होती हैं। ऐसा उस समय होता है जब लोग विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा में विश्वास खो बैठते हैं।

अवस्फीति : इस दशा में कीमतों में निरंतर गिरावट या गिरावट की

प्रवृत्ति देखी जाती है। सामान्यतः इसका काण समग्र माँग का समग्र पूर्ति से कम बने रहना होता है।

मुद्रास्फीतिजन्य मंदी : वह स्थिति जब बढ़ती हुई मुद्रास्फीति की दशा में उत्पादन स्थिर रहता है या फिर घटता है। यह उन्हीं दशाओं में संभव होता है जब अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक अनम्यता (जैसे परिवतन, विद्युत आदि सुविधाओं का अभाव) हो।

उत्पादन पूर्व अवधि : किसी परियोजना में पूँजी लगाने तथा उससे उत्पादन प्रारंभ होने के बीच का अंतराल।

मात्रानुपाती प्रणाली : उत्पादित वस्तुओं की संख्या के आधार पर भुगतान।

पैट्रोलियम निर्यातक देशों का संगठन (OPEC) : यह विश्व के प्रमुख तेल उत्पादक और निर्यातक देशों का संगठन है। इसमें इण्डोनेशिया, सऊदी अरब शामिल हैं।

19.14 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Macroeconomics, A. Bhaduri : *The Dynamics of Commodity Production*, 1986, ch.3

Monetary Economics, S.B. Gupta : *Institutions, Theory and Policy*, 1989, ch.4

Monetary Planning in India, S.B. Gupta : 1979, ch.3 and Appendices.

Macroeconomics Analysis, Shapiro Edward : Sixth Edition, ch. 21,22,23.

19.15 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा दिशा-संकेत

बोध प्रश्न 1

1) कीमत वह दर है जिस पर वस्तु और सेवाओं का मुद्रा से विनिमय होता है। किसी वस्तु की एक इकाई के बदले जितने रुपये दिए जाते हैं, वही उसकी कीमत कहलाती है। कीमत स्तर एक समष्टि अवधारणा है क्योंकि इसका संबंध वस्तुओं और सेवाओं के एक समूह से है। इसका संबंध किसी एक वस्तु की कीमत से नहीं बल्कि समूह में शामिल सभी वस्तुओं व सेवाओं की कीमतों से होता है। अतः जब भी हम कीमत स्तर की बात करते हैं तो वह चीज़ों के किसी समूह के संदर्भ में ही होती है।

2) एक सूचकांक किसी परस्पर संबंधित चरों के आँकड़ों के सामूहिक स्तर की दो या अधिक अवधियों में तुलना करता है। कीमत सूचकांक द्वारा हम वस्तुओं और सेवाओं के समूह के कीमत स्तर के परिवर्तनों की तुलना कर सकते हैं। सूचकांक समय के साथ जुड़ा है। किसी एक वर्ष को आधार मानकर उसका सूचकांक 100 मान लेते हैं। अन्य सभी वर्षों के सूचकांक 100 के अनुपात के रूप में ही व्यक्त किए जाते हैं।

बोध प्रश्न 2

1) मुद्रास्फीति के समाज के अलग–अलग वर्गों पर अलग–अलग प्रभाव पड़ते हैं। संगठित श्रमिक तथा सरकारी कर्मचारी किसी हद तक मुद्रास्फीति काल में अपने हितों का संरक्षण कर पाते हैं। व्यापारी वर्ग तो इससे फायदा ही उठाता है क्योंकि इस समय आवश्यक चीज़ों का अभाव–सा छाया रहता हैं जिनके कारण वे इनकी कीमतें बढ़ा देते हैं। पर गरीब एवं निश्चित

आय वर्ग बहुत हानि होती है एक तो मालिकों की तुलना में इनकी सौदा शक्ति बहुत कम होती है, दूसरे इनके पास कोई जमापूँजी नहीं होती जिससे ये अपना काम चला सकें।

2) मुद्रास्फीति दर की तीव्रता के आधार पर हम मुद्रास्फीति के तीन वर्गों में बाँट सकते हैं, सामान्य, द्रुत तथा अतिस्फीति। जब कीमतें निरंतर पर धीरे–धीरे बढ़ रही हों तो सामान्य मुद्रास्फीति की दशा होती है। यह आमतौर पर 10 प्रतिशत से कम ही रहती है। दूसरी ओर, अच्छी खासी तेजी से कीमत वृद्धि को द्रुत मुद्रास्फीति का नाम दिया जाता है। मुद्रास्फीति दर 20 से 40 प्रतिशत हो जाती है– पर कभी–कभी तो यह बढ़कर 200 प्रतिशत तक भी पहुँच जाती है। *अतिस्फीति* की दशा में तो कीमतें आकाश को ही छूने लगती हैं।

बोध प्रश्न 3

1) मुद्रास्फीति के कारणों को दो वर्गों में बाँटते हैं : माँग–पक्ष तथा पूर्ति–पक्ष। सरकारी व्यय तथा मुद्रा की आपूर्ति आदि वृद्धि को माँग–पक्ष में रखते हैं। फसल खराब हो जाना, किन्हीं आवश्यक वस्तुओं की लागत में अचानक वृद्धि आदि को पूर्ति–पक्ष में रखा जाता है।

   अधिक विवरण के लिए वह खंड देखें जिसमें मुद्रास्फीति के कारणों की व्याख्या की गई है।

2) 1960 के दशक तक सभी यह मानते थे कि मुद्रास्फीति रोज़गार तथा उत्पादन स्तर में सुधार लाती है। पर अगले ही दशक में मुद्रास्फीति के साथ–साथ बेरोज़गारी में वृद्धि ने इस विश्वास को गहरी ठेस पहुँचाई। ऐसी परिस्थितियों को, जिसमें मुद्रास्फीति में वृद्धि के साथ–साथ उत्पादन स्थिर रहता है या फिर गिरने लगता है, मुद्रास्फीतिजन्य मंदी (Stagflation) की संज्ञा दी जाती है।